विचार संगम

भारतीय दर्शन, विज्ञान, साहित्य-कला और तकनीकी के विशेष संदर्भ में

सम्पादक
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

विचार संगम

भारतीय दर्शन, विज्ञान, साहित्य-कला और तकनीकी के विशेष संदर्भ में

सम्पादक :

डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

Ph.D., D.Lit. (Sub.)

निदेशक, कॉम्पिटिशन प्लस ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन,
अजमेर

Books n Books

51/1509, आचमन, वेदविहार,
लोहाखान, अजमेर-305001

प्रकाशक :

पुष्पा शर्मा

Books n Books

51/1509, आचमन, वेदविहार,

लोहाखान, अजमेर-305001

ई-मेल : bnbajmer@gmail.com

संस्करण

प्रथम 2025

ISBN : 978-81-993854-0-5

मूल्य - 400/-

रचना - विचार संगम-भारतीय दर्शन, विज्ञान, साहित्य-कला और तकनीकी के विशेष संदर्भ में

सम्पादक - डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

मुद्रक - श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स, अजमेर

3

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के जनजागरण में आर्यसमाज की भूमिका

रितु सारस्वत
सहायक आचार्य (शिक्षा विभाग)
हुकुमचन्द नोबेल इंस्टीट्यूट ऑफ साईंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

19वीं शताब्दी के भारतीय पुनर्जागरण काल में आर्यसमाज का योगदान अत्यंत प्रभावशाली और व्यापक रहा। महर्षि दयानन्द ने 1875 में आर्यसमाज की स्थापना करके न केवल धार्मिक सुधार की दिशा में, बल्कि राष्ट्रीय चेतना, सामाजिक समानता और राजनीतिक स्वाधीनता की भावना के प्रसार में भी ऐतिहासिक भूमिका निभाई। उन्होंने 'स्वराज, स्वदेशी और स्वभाषा' के जो तीन आदर्श स्थापित किए, वे आगे चलकर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रमुख राजनीतिक कार्यक्रम बने। आर्यसमाज ने भारतीय समाज में आत्मगौरव और स्वतंत्रता की भावना का संचार किया, जिससे जनमानस में राष्ट्रीयता की चेतना जागी।

स्वामी श्रद्धानन्द जैसे आर्यसमाजी नेताओं ने इस चेतना को क्रांतिकारी रूप में परिवर्तित किया। सूरत विभाजन (1907) के समय उनका कांग्रेस के नरम और गरम दलों के प्रति आक्रोश इस तथ्य को उजागर करता है कि वे आधे-अधूरे सुधार नहीं, बल्कि पूर्ण स्वराज्य और आत्मनिर्भरता के समर्थक थे।

आर्यसमाज ने भारतीय पुनर्जागरण को दिशा दी, राष्ट्रीय आंदोलन को वैचारिक आधार प्रदान किया, और भारतीय संस्कृति, समाज तथा राजनीति में आत्मनिर्भरता एवं स्वाभिमान का भाव उत्पन्न किया। इस प्रकार, आर्यसमाज का योगदान न केवल पुनर्जागरण काल तक सीमित रहा, बल्कि वह स्वतंत्रता संग्राम और आधुनिक भारत के निर्माण का भी प्रेरक तत्त्व बना।

आर्यसमाज केवल धार्मिक सुधार तक सीमित नहीं रहा, बल्कि उसने भारतीय स्वराज्य की प्राप्ति के लिए सक्रिय और संगठित प्रयास किए। यद्यपि आर्यसमाजी कांग्रेस के नरम दल की शिक्षा एवं सामाजिक सुधार की नीतियों से सहमत थे, परंतु वे राजनीतिक अधिकारों की भिक्षावृत्ति के विरोधी थे। आर्यसमाज का उद्देश्य राष्ट्र की आत्मनिर्भरता और स्वतंत्रता था, न कि केवल अंग्रेजी शासन से कुछ रियायतें प्राप्त करना।

स्वामी श्रद्धानन्द ने महात्मा गांधी के असहयोग आंदोलन को धर्मयुद्ध की संज्ञा देते हुए उसमें पूर्ण निष्ठा से भाग लिया। उनके नेतृत्व में आर्यसमाजी कार्यकर्ताओं ने सत्याग्रह आंदोलन को दिल्ली में सफल और प्रभावशाली बनाया। इन्द्र विद्यावाचस्पति के अनुसार, दिल्ली की सत्याग्रह कमेटी में आर्यसमाजियों की प्रमुख भूमिका थी, और आंदोलन के संगठन, अनुशासन तथा कार्यक्षमता का श्रेय स्वामी श्रद्धानन्द को जाता है।

जामा मस्जिद और फतेहपुरी मस्जिद से स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा दिए गए भाषण भारतीय इतिहास की एक ऐतिहासिक घटना बन गए—जहाँ वेदमंत्रों और सत्याग्रह के सिद्धांतों का संगम हुआ।

डॉ. कमलाकांत पाठक के शब्दों में—उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में जो राष्ट्रीय चेतना भारत में जाग्रत हुई, उसके मूल में आर्यसमाज की ही प्रेरक शक्ति थी। आर्यसमाज ने धर्म, समाज और राष्ट्र—तीनों ही क्षेत्रों में पुनर्जागरण का सूत्रपात किया।

1919 में महात्मा गांधी द्वारा सत्याग्रह की घोषणा ने स्वामी श्रद्धानन्द को राष्ट्रीय राजनीति के अग्रणी पंक्ति में ला दिया। उन्होंने दिल्ली में सत्याग्रह का नेतृत्व करते हुए अद्भुत साहस और नेतृत्व-क्षमता का परिचय दिया। पट्टाभि सीतारमैय्या के अनुसार, 30 मार्च 1919 को जब गोरे सिपाहियों ने उन्हें गोली मारने की धमकी दी, तो उन्होंने निर्भीकता से अपनी छाती खोल दी और कहा—'लो, मारो गोली।' यह घटना भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में निर्भीकता, त्याग और देशभक्ति का प्रतीक बन गई।

आर्यसमाज ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को वैचारिक बल और नैतिक प्रेरणा दी, जबकि स्वामी श्रद्धानन्द ने उसे वास्तविक नेतृत्व और क्रियात्मक दिशा प्रदान की।

आर्यसमाज का लक्ष्य केवल धार्मिक सुधार तक सीमित नहीं था, बल्कि वह राजनीतिक स्वाधीनता और लोकतांत्रिक सुधारों का भी प्रबल समर्थक था। महर्षि दयानन्द ने वेदों के आदर्शों पर आधारित एक स्वतंत्र और आत्मनिर्भर भारत की कल्पना की थी। इसी उद्देश्य से आर्यसमाज ने गुरुकुल और दयानन्द एंग्लो वैदिक (डी.ए.वी.) संस्थाओं की स्थापना की, जो राष्ट्रप्रेम, अनुशासन और स्वदेशी शिक्षा के केंद्र बने।

आर्यसमाज के नेताओं—लाला लाजपत राय, भाई परमानन्द, अजीत सिंह, भगत सिंह, रामप्रसाद बिस्मिल, गेंदालाल दीक्षित आदि ने स्वतंत्रता संग्राम में निर्णायक योगदान दिया। उन्होंने सामाजिक कुरीतियों, अंधविश्वासों और जातिगत भेदभाव के विरुद्ध संघर्ष करते हुए राष्ट्रीय एकता की भावना को सशक्त बनाया।

ब्रिटिश शासन भी आर्यसमाज की बढ़ती राजनीतिक चेतना से भयभीत था,

जिसका प्रमाण उस समय की सरकारी गुप्त रिपोर्टें हैं, जिनमें आर्यसमाज को 'सरकार-विरोधी संगठन' बताया गया। आर्यसमाजी छात्र और कार्यकर्ता गांधीजी के सत्याग्रह, असहयोग, और विदेशी वस्त्र बहिष्कार आंदोलनों में अग्रिम पंक्ति में रहते थे।

आर्यसमाज ने भारतीय समाज में नारी को केवल गृहस्थ जीवन तक सीमित न रखकर उसे राष्ट्र के उत्थान और राजनीतिक चेतना का सक्रिय अंग बनाने का प्रयास किया। 5 अप्रैल 1912 के लाहौर हिन्दू शिक्षा सम्मेलन में स्त्री शिक्षा पर पारित प्रस्ताव इस दिशा में ऐतिहासिक मील का पत्थर सिद्ध हुए। सरला देवी (लाहौर आर्यसमाज के नेता रोशनलाल की धर्मपत्नी) ने 1907 में स्पष्ट कहा था कि अब भारतीय महिलाओं को राष्ट्रीय कार्यों में अपने पतियों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलना चाहिए। यह उद्घोष उस युग की स्त्रियों के लिए जागरण का शंखनाद था।

आर्यसमाज ने स्त्री-शिक्षा, विधवा-विवाह, बाल-विवाह-निषेध, और स्त्री-अधिकारों की रक्षा जैसे अनेक सुधारवादी कार्यों को राष्ट्रीय पुनर्जागरण से जोड़ा। प्रस्तुत कविताओं में समाज की विकृतियों—बाल-विवाह, विधवा-दु:ख, स्त्री-उपेक्षा आदि—पर गहरी करुणा और प्रखर विरोध व्यक्त किया गया है। इन पद्यों के माध्यम से न केवल स्त्रियों की पीड़ा का चित्रण हुआ, बल्कि उन्हें 'आर्यलोक की उजियारी' बनकर पुनः समाज में जागृति लाने का आह्वान भी किया गया। आर्यसमाज के इस विचार ने यह स्पष्ट कर दिया कि राष्ट्र का उत्थान तभी संभव है जब स्त्रियाँ शिक्षित, स्वतंत्र और जागरूक हों।

पंडित भीष्माचार्य श्री दामोदर सातवलेकर जैसे विद्वानों ने गुरुकुल कांगड़ी में वैदिक शिक्षण को केवल धार्मिक नहीं, बल्कि राष्ट्रभक्ति और स्वराज्य की भावना से भी ओतप्रोत कर दिया। वे विद्यार्थियों को वेदों के उन मंत्रों का अध्ययन कराते थे जिनमें राष्ट्रीय एकता, स्वाभिमान और देशसेवा की प्रेरणा निहित थी। उन्होंने इन विचारों को 1908 में मराठी पत्र 'विश्ववृत्त' में प्रकाशित लेख 'वैदिक प्रार्थनाओं की ओजस्विता' के माध्यम से समाज तक पहुँचाया, जिससे यह स्पष्ट हुआ कि वेदों में निहित संदेश केवल अध्यात्मिक नहीं बल्कि राजनीतिक और राष्ट्रीय जीवन के भी मार्गदर्शक हैं।

महात्मा गांधी के असहयोग, सत्याग्रह और नमक आंदोलन में गुरुकुल कांगड़ी के शिक्षक और विद्यार्थी सक्रिय रूप से भाग लेते थे। प्रो. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती चन्द्रावती लखनपाल ने विदेशी वस्त्रों की होली जलाकर और शराबबंदी आंदोलन में भाग लेकर राष्ट्रीय आंदोलन को नैतिक बल प्रदान किया। बाद में स्वतंत्र भारत में उन्हें राज्यसभा सदस्य के रूप में सम्मानित किया गया—जो उनके संघर्ष और योगदान की ऐतिहासिक मान्यता है।

उत्तर प्रदेश में आर्यसमाज के कार्यकर्ताओं ने राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय भाग

लेकर स्वतंत्रता संग्राम को जन-आंदोलन का स्वरूप दिया। भाई रोशन सिंह, भाई बालमुकुन्द, और विष्णुशरण दुबलिश जैसे वीर आर्यसमाजियों ने देश की स्वतंत्रता के लिए अपने प्राणों की आहुति दी।

आर्यसमाज की विचारधारा से प्रभावित पं. गोविन्द वल्लभ पंत, श्री चन्द्रभानु गुप्त, श्रीमती सुचेता कृपलानी, और श्री चौधरी चरण सिंह जैसे नेता आगे चलकर उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री बने जो यह प्रमाणित करता है कि आर्यसमाज ने केवल आंदोलन ही नहीं, बल्कि स्वतंत्र भारत के नेतृत्व की भी आधारशिला रखी।

महात्मा गांधी के आश्रम से जुड़े गणपत, अवनिमोहन और सुभाष विद्यालंकार जैसे आर्यसमाजी सहयोगियों ने राष्ट्रीय आंदोलन को संगठनात्मक और वैचारिक बल प्रदान किया।

आर्यसमाज के कई शिक्षक और विद्वान जैसे पं. लेखराम आर्य शास्त्री, जिन्हें जेल में टीबी हुई और वहीं से पैरोल पर रिहा होने के बाद उनका निधन हुआ, तथा ब्रह्मदत्त और देवदत्त जैसे शिक्षाविदों ने अपने जीवन को राष्ट्रसेवा के लिए समर्पित किया।

आर्यसमाज के आंदोलन में केवल धार्मिक सुधारक और राजनैतिक नेता ही नहीं, बल्कि साहित्यकारों और कवियों ने भी जनचेतना को प्रज्वलित करने में अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान दिया। पं. नाथूराम शर्मा 'शंकर' के ओजस्वी गीतों ने जनता में स्वराज्य और बलिदान की भावना जागृत की—

'लो स्वराज्य-स्वतंत्रता को, दो जीवन बलिदान।'

इसी प्रकार कवि रामनरेश त्रिपाठी ने अपनी कृति 'पथिक' में पराधीनता को मानवता के लिए सबसे बड़ा कलंक बताया—

'पराधीनता से बढ़ जग में नहीं दूसरा दुःख है।'

कवि रामधारी सिंह दिनकर ने भी स्पष्ट किया कि भारतीय राष्ट्रीयता कोई पश्चिमी आयात नहीं, बल्कि भारत के सांस्कृतिक पुनरुत्थान की कुक्षि से उत्पन्न चेतना है।

आर्यसमाज के कवियों और लेखकों ने साहित्य को केवल कलात्मक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि राष्ट्रभक्ति, सामाजिक सुधार और सांस्कृतिक अस्मिता के शस्त्र के रूप में प्रयुक्त किया। उन्होंने बाल-विवाह, स्त्री-शोषण, और अंधविश्वास जैसी कुरीतियों पर तीव्र प्रहार करते हुए सामाजिक जागरण को राष्ट्रीय पुनरुत्थान से जोड़ा।

महर्षि दयानन्द सरस्वती के 'वेदों की ओर लौटो' के आह्वान ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को वैचारिक आधार दिया। उनके राष्ट्रवाद में विदेशी प्रभावों से मुक्त स्वदेशी संस्कृति, स्वराज्य और स्वभाषा का आदर्श निहित था।

आर्यसमाज का मूल विश्वास था कि आर्यावर्त (भारत) आर्यों की भूमि है, जिसकी संस्कृति विश्व की सबसे प्राचीन और उत्कृष्ट संस्कृति है। इस गौरवपूर्ण

सांस्कृतिक परंपरा के आधार पर आर्यसमाज ने राष्ट्रवाद और स्वाभिमान की भावना का पुनर्जागरण किया।

1912 की पश्चिमोत्तर प्रदेश की जनगणना रिपोर्ट में मि. ब्लंट (I.C.S.) की टिप्पणी अत्यंत महत्वपूर्ण है, जिसमें उन्होंने माना कि आर्यसमाज पर 'राजनीतिक संस्था' होने का आरोप निरंतर लगाया गया, किंतु उसके मूल उद्देश्य धार्मिक-सामाजिक सुधार पर ही केंद्रित थे। यद्यपि यह सत्य है कि आर्यसमाज के अनेक सदस्य राजनीतिक गतिविधियों में सक्रिय थे और गौ-रक्षा, शिक्षा, तथा सामाजिक सुधार के आंदोलनों में अग्रणी भूमिका निभा रहे थे, परंतु यह कहना अनुचित होगा कि आर्यसमाज सामूहिक रूप से एक राजनीतिक संगठन था।

मि. ब्लंट ने यह भी स्वीकार किया कि आर्यसमाज के सिद्धांतों से राष्ट्रीय गौरव और देशभक्ति की भावना जागृत होती है, जो स्वाभाविक रूप से जनता को राजनीतिक चेतना की ओर प्रेरित करती है। आर्यसमाज के अनुयायी शिक्षित, सुधारवादी, और देशोन्नति के प्रति समर्पित थे—यही कारण था कि उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन को नैतिक और वैचारिक बल प्रदान किया।

ब्रिटिश सरकार ने आर्यसमाज की इसी राष्ट्रोन्मुखी चेतना को संदेह की दृष्टि से देखा। 'टाइम्स' के संवाददाता मि. शिरोल ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'इण्डियन अनरेस्ट' (1910) में गुरुकुल कांगड़ी को राजद्रोह का केंद्र तक कहा। वास्तव में गुरुकुल कांगड़ी उस समय राष्ट्रभक्तों, क्रांतिकारियों और स्वतंत्रता सेनानियों का प्रेरणास्थल बन चुका था। यहाँ शिक्षा के साथ-साथ स्वदेशी, स्वराज्य और आत्मनिर्भरता का संदेश दिया जाता था।

गदर पार्टी के संस्थापक लाला हरदयाल भी गुप्त रूप से गुरुकुल आए और ब्रह्मचारियों में स्वराज्य की अग्नि प्रज्वलित की। इससे यह सिद्ध होता है कि आर्यसमाज की शिक्षण संस्थाएँ केवल धार्मिक या शैक्षिक केंद्र न होकर, राष्ट्रीयता और स्वतंत्रता चेतना के प्रखर केन्द्र थीं।

जब इंग्लैण्ड के प्रधानमंत्री रेम्जे मैक्डोनाल्ड ने गुरुकुल कांगड़ी का दौरा किया, तो वे इसकी व्यापक ख्याति और राजनीतिक चेतना से अत्यंत प्रभावित हुए। उन्होंने 'डेली क्रॉनिकल' में लिखा कि — "भारत में राजद्रोह के संबंध में जिसने कुछ थोड़ा भी पढ़ा है, उसने गुरुकुल का नाम अवश्य सुना होगा, जहाँ आर्यसमाजियों के बालक शिक्षा ग्रहण करते हैं।"

यह टिप्पणी स्वयं इस तथ्य का प्रमाण है कि गुरुकुल कांगड़ी केवल एक शैक्षणिक संस्था नहीं, बल्कि राष्ट्रप्रेम, आत्मनिर्भरता और स्वाधीनता के आदर्शों का प्रखर केंद्र बन चुकी थी।

ब्रिटिश साम्राज्य ने आर्यसमाज के बढ़ते प्रभाव को अपने शासन के लिए खतरा

माना, इसलिए आर्यसमाजियों पर दमनात्मक कदम उठाए गए —

* गुलाबचन्द, जो 35वीं सिख रेजीमेंट में क्लर्क था, केवल आर्यसमाजी होने के कारण नौकरी से निकाल दिया गया।
* करनाल के डिप्टी कमिश्नर ने पानीपत के नागरिकों को आदेश दिया कि वे अपने नगर से आर्यसमाजियों को निकाल दें — यहाँ तक कि जिन दो व्यक्तियों को बुलाया गया, वे स्वयं आर्यसमाजी निकले।
* जाट रेजीमेंट के सैनिकों को यज्ञोपवीत (जनेऊ) उतार देने का आदेश दिया गया, क्योंकि वह उनकी 'हिन्दू पहचान' और 'आर्य परंपरा' का प्रतीक माना जाता था।
* यहाँ तक कि एक मुसलमान जमादार को यूरोपियन लेफ्टिनेंट ने 'आर्यसमाजी उद्दंड' कहकर डाँटा, जिससे स्पष्ट होता है कि ब्रिटिश अफसरों की नजर में 'आर्यसमाजी' शब्द राजद्रोह का पर्याय बन चुका था।
* आर्यसमाज के प्रचारक पंडित दौलतराम, जिन्होंने झाँसी में सैनिकों को वेदोपदेश दिया और अनाथालय के लिए चंदा एकत्र किया, उन्हें भी कारावास भुगतना पड़ा।

ब्रिटिश शासन आर्यसमाज और उसके अनुयायियों को केवल धार्मिक संगठन नहीं, बल्कि राष्ट्रवादी गतिविधियों का केंद्र मानता था। पंजाब, शाहजहाँपुर, इन्दौर जैसी जगहों पर आर्यसमाजी सिपाही और कर्मचारी अपने पद छोड़ने को मजबूर हुए। 1889 में लाहौर के कॉलेज से कुछ छात्रों को स्वामी दयानन्द से जुड़े पत्रक वितरण के आरोप में निष्कासित किया गया। जोधपुर में वायसराय के मार्ग में मंदिर से झंडा और परिचय-पट्ट हटाए गए, जबकि जालंधर में आर्यसमाजियों की सूची मांगी गई। इसी दमन की श्रृंखला में लाला लाजपत राय को देश निकाला गया और महात्मा हंसराज तथा भाई परमानन्द को गिरफ्तार किया गया। इन सभी घटनाओं से स्पष्ट होता है कि आर्यसमाज ने केवल धार्मिक सुधार नहीं किया, बल्कि राष्ट्रीय चेतना और स्वतंत्रता आंदोलन में भी अहम भूमिका निभाई।

कर्नल पर्सी ने अपनी रिपोर्ट में जिलाधीश, पुलिस अधीक्षक और डिप्टी कमिश्नर से प्राप्त सूचनाओं का संकलन करते हुए निष्कर्ष निकाला कि 'सत्यार्थ प्रकाश' में कोई राजद्रोह नहीं है और रेजीमेण्ट के अधिकांश सैनिक आर्यसमाजी होने का आरोप निराधार है। इससे यह स्पष्ट होता है कि आर्यसमाज के संबंध में कई आरोप और संदेह केवल अफवाह या पूर्वाग्रह पर आधारित थे।

सर वैलेन्टाइन शिरोल ने भी लिखा कि महर्षि दयानन्द की शिक्षाओं का मुख्य उद्देश्य हिंदुत्व सुधारना नहीं, बल्कि विदेशी प्रभावों के विरुद्ध भारतीय समाज को संगठित और जागरूक करना था। यही दृष्टिकोण राष्ट्रवाद के पोषण में सहायक सिद्ध

हुआ।

गुरुकुल कांगड़ी के संस्थापक स्वामी श्रद्धानन्द और आचार्य रामदेव ने स्पष्ट किया कि जब आर्यसमाज प्राचीन भारत के गौरव का गान करता है, तो यह युवाओं में राष्ट्रवादी चेतना जगाता है। इससे उनका सुषुप्त राष्ट्रीय अहंकार जागृत होता है और वे भारत की अपमानजनक, पराधीन और शोषित ऐतिहासिक स्थिति को बदलने की आकांक्षा रखते हैं। इस प्रकार आर्यसमाज ने न केवल सांस्कृतिक और धार्मिक सुधार किया, बल्कि भारतीय राष्ट्रवाद और स्वाभिमान को भी प्रबल किया।

महर्षि दयानन्द मूलतः वेदों के ज्ञाता, समाज सुधारक और ईश्वर भक्त थे। उन्होंने आध्यात्मिक आंदोलन का सूत्रपात किया और अपने महत्वपूर्ण ग्रंथ सत्यार्थ-प्रकाश में अपने राजनीतिक विचारों को भी एक अध्याय में प्रस्तुत किया। यही कारण था कि अंग्रेज़ों ने आर्यसमाज को राजद्रोही संस्था मानकर उसके विरुद्ध कार्रवाई की, जबकि आर्यसमाज स्वयं को केवल धार्मिक और सामाजिक सुधारक के रूप में घोषित करता रहा।

महर्षि दयानन्द के प्रभाव से प्रेरित श्यामजी कृष्ण वर्मा, जो उनके शिष्य थे, ने अजमेर की परोपकारिणी सभा से जुड़कर बाद में इंग्लैंड में इंडिया हाउस की स्थापना की। वहाँ वे भारतीय युवाओं और मेधावी छात्रों को छात्रवृत्ति देकर स्वतंत्रता आंदोलन के लिए प्रेरित करते थे। इसी पृष्ठभूमि से लाला लाजपत राय और भगत सिंह के चाचा अजित सिंह को राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेने के कारण देश निकाला दिया गया। आर्यसमाज के ही भाई परमानन्द ने तारीखे-हिन्द में राष्ट्रीय आंदोलन की अनेक गतिविधियों का उल्लेख किया है।

वास्तव में, लाला लाजपत राय का विश्वास था कि केवल स्वतंत्र देश के राजनीतिज्ञ ही विभिन्न विचारधाराओं—उदारवाद, रूढ़िवाद, जनतंत्रवाद, दक्षिणपंथ, वामपंथ आदि के बीच संतुलन स्थापित कर सकते हैं। पराधीन देश में राजनीति केवल राष्ट्रवाद की राजनीति हो सकती है, जिसका एकमात्र उद्देश्य मातृभूमि को दासता के बंधनों से मुक्त कराना होना चाहिए। उनके अनुसार देशभक्ति एक धर्म है और मातृभूमि उनकी उपास्य देवी।

निष्कर्षतः आर्यसमाज धार्मिक सुधार का केंद्र होते हुए भी राष्ट्रीय चेतना और स्वतंत्रता आंदोलन का प्रबल प्रेरक और संरक्षक था, जिसने भारतीय समाज में संस्कृति, शिक्षा और राष्ट्रवाद के माध्यम से स्वराज्य और सामाजिक प्रबुद्धता की नींव डाली।

इस प्रकार महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज ने धार्मिक और सामाजिक सुधार के साथ-साथ राष्ट्रीय चेतना और स्वतंत्रता आंदोलन की नींव भी मजबूत की।